E-ISSN: 2583-9667
Indexed Journal
Peer Reviewed Journal
https://multiresearchjournal.theviews.in/

Received: 15-07-2023
Accepted: 21-07-2023

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCE RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY

Volume 1; Issue 1; 2023; Page No. 04-09

प्रकृति और मानव विकास के दो प्रतिमान; क्या वे तुलनीय है?

दिग्विजय विश्वकर्मा
पीएचडी शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

सार
प्रकृति और मानव का संबंध वर्तमान समय में सबसे नाजुक दौर में पहुंच गया है। हजारों सालों से प्रकृति और मानव के बीच गहरा संबंध रहा है, किंतु वर्तमान समय में मानव अपना विकास करने के लिए प्रकृति का निरंतर शोषण कर रहा है। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के बजाय आज मनुष्य अपने शौक को पूरा करने तथा भोग विलास से भरे जीवन को प्राप्त करने के लिए प्रकृति का अंधाधुंध शोषण कर रहा है। यह प्रकृति और मनुष्य के संबंधों में संघर्ष के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी कारण है। प्रकृति के साथ मानव का संबंध कितना मधुर व सहज होना चाहिए यह हमें भारतीय/हिंदू संस्कृति में देखने को मिलता है, जो हजारों वर्षों से अपनी परंपराओं का निर्बाध रुप से पालन कर रही है। किंतु आज विश्व में विकास का जो मॉडल अपनाया जा रहा है वह पश्चिमी सभ्यता के दर्शन व उसकी मान्यताओं से उपजा है जिसमें मानव व प्रकृति के बीच का संबंध संघर्षमय है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की लालसा पश्चिमी संस्कृति के मूल विचारों में है। आज विश्वभर में मानव इन्हीं मान्यताओं से उपजी तकनीकों का प्रयोग कर अपने विकास की भूख मिटाना चाहता है व भोग-विलास से भरे जीवन को प्राप्त करने के लिए वह प्रकृति का शोषण कर रहा है। दूसरी तरफ भारतीय संस्कृति प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व के विचार पर हजारों वर्षों से चल रही है लेकिन आज परिस्थितियां बदल रही हैं। भारत भी विकास के पश्चिमी मॉडल से न केवल प्रभावित है बल्कि उसे अपना भी रहा है। लेकिन क्या यह उचित है? वर्तमान में बढ़ता वैश्विक तापमान, बदलता मौसम चक्र एवं पर्यावरणीय असंतुलन जिससे मानव अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है, वह इसी शोषणकारी विकास का परिणाम है। हमारे सामने मानव विकास और प्रकृति व मानव के बीच संबंधों को दर्शाते दो प्रतिमान मौजूद हैं। क्या इन दोनों प्रतिमानों की तुलना संभव है, क्या इसमें कुछ साम्य है? मानव अस्तित्व को बचाए रखने व भविष्य संवारने के लिए कौन सा प्रतिमान अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है? निश्चित ही विकास की आज अंधाधुंध दौड़ में हमें प्रकृति व मानव के बीच के संबंधों को एक बार पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता है।

कुटशब्द : प्रकृति, मानव विकास, हिंदू संस्कृति

1. प्रस्तावना

भारतीय दृष्टिकोण प्रकृति को एक जीवित जीव के रूप में देखता है। जिसमे मनुष्य भी इस प्रकृति का सभी जीव-जंतुओं व पेड़-पौधों समेत एक अभिन्न अंग है, ये सभी एक साथ सहयोग व सद्भाव के साथ रहते हैं और इन सभी का एक सामान्य लक्ष्य/नियति है। भारतीय दृष्टिकोण प्रकृति को एक वस्तु के रूप में नहीं देखता, जिसका शोषण करने के लिए मनुष्य स्वतंत्र है। बल्कि प्रकृति के साथ मानव का संबंध उसके एक अभिन्न अंग के रूप में है। मानव को प्रकृति के साथ सम्मान के साथ व्यवहार करना चाहिए। मानव को इसे नष्ट करने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि उसके पास इसे बनाने की कोई शक्ति नहीं है, उसे इसी प्रकृति में रहना है। सरल व सामान्य शब्दों में इसे सह-अस्तित्व कहा जाता है। यदि हम सबसे प्राचीन भाषा, वेदों की भाषा संस्कृत की बात करे तो हम देखेंगे कि संस्कृत भाषा में शोषण का पर्यायवाची कोई शब्द नहीं है, शब्द दोहन है। प्रकृति का दोहन किया जाना चाहिए, शोषण नहीं। प्रकृति के संसाधनों का संतुलित और श्रद्धा पूर्ण उपयोग आर्थिक विकास का आदर्श है। प्रकृति को श्रद्धा की

दृष्टि से देखना सिर्फ एक भावुक दृष्टिकोण नहीं है, यह मानव कल्याण और विकास की दृष्टि से एकमात्र समझदार और सहायक दृष्टिकोण है और इसका कोई विकल्प नहीं है। दूसरी तरफ पश्चिमी संस्कृति प्रकृति को लेकर ठीक इसके विपरीत विचार रखती है। पश्चिमी संस्कृति प्रकृति को एक मशीन के रूप में देखती है जो इसे भागों और खंडों में विभाजित व उप-विभाजित करके उसके बाद इसका विश्लेषण करता है और इस तरह अलग-अलग खंडों के अलग-अलग विशेषज्ञ बनते हैं। इसके बाद इन सभी को यंत्रवत रूप से इकट्ठा करने का प्रयास किया जाता है। प्रकृति के प्रति इसी न्यूनतावादी दृष्टिकोण और इसमें निहित शोषणकारी दृष्टि के परिणामस्वरूप पश्चिमी दर्शन में प्रकृति पर मानव के वर्चस्व की बात की जाती है। पश्चिम में उदित हुई औद्योगिक सभ्यता पूर्ण रूप से मशीन उन्मुखी है। पाश्चात्य के इस न्यूनीकरणवादी दृष्टिकोण में प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को मनुष्य अपने सुख के लिए उपयोग करने में विश्वास करता है और यदि इसके लिए प्रकृति का शोषण भी करना हो तो भी वह इसे उचित मानता है। शारीरिक और बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में ही आराम और इसमें ही सुख की परिकल्पना की जाती है। औद्योगीकरण इन आवश्यकताओं और सुख-सुविधाओं को उत्पन्न करने का साधन है। औद्योगिकरण का वह तरीका सबसे अच्छा माना जाता है जो इन भौतिक वस्तुओं और सेवाओं की अधिकतम मात्रा में आपूर्ति करता है। यह स्वाभाविक रूप से कच्चे माल और प्राकृतिक संसाधनों के निर्मम शोषण की ओर जाता है। उपनिवेशवाद, पूंजीवाद आदि इसी दृष्टिकोण के परिणाम है और यह दृष्टिकोण पर्यावरण को प्रदूषण व विनाश की ओर भी ले जाता है। वर्तमान पारिस्थितिक आंदोलन को चलाने वाले आधुनिक तकनीकी प्रगति के निवारक उपायों को अपनाकर वायु और जल प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए यांत्रिक उपकरणों का उपयोग करके पश्चिमी उद्योगवाद की बुराइयों को रोकने का प्रयास करते हैं लेकिन इसकी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि केवल यह केवल यांत्रिकता के रूप में ही है क्योंकि यह मामले की जड़ तक नहीं जाता है और यह जीवन के भौतिकवादी और उपभोक्तावादी दर्शन के विरुद्ध कोई दर्शन नहीं देता है क्योंकि ये दोनों दर्शन ही प्रकृति का शोषण करने के लिए आधार प्रदान करते हैं। आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल करके पर्यावरण प्रदूषण जैसी चुनौतियों का अल्पकालिक उपाय तो संभव है और इसलिए इन उपायों का स्वागत किया जाना चाहिए। लेकिन यह जरूरी है कि जीवन के प्रति एक अलग दर्शन व प्रकृति के प्रति अलग दृष्टिकोण रखने वाले शक्तिशाली आंदोलन को जन्म दिया जाए क्योंकि वही एक अकेला रास्ता है जो भौतिकतावाद व उपभोक्तावाद के प्रचंड प्रभाव की चुनौती का सफलतापूर्वक सामना कर सकता है। वर्तमान में हम देख सकते हैं कि पश्चिमी देशों में भी इस तरह की जागरूकता तेजी से फैल रही है और इस तरह के आंदोलनों को, प्रकृति के प्रति भारतीय दृष्टिकोण से व्यापक समर्थन मिल सकता हैं।

2. दो प्रतिमान (Two Paradigms)

विश्व स्तर पर व्यापक रूप से दो प्रतिमान विद्यमान हैं जिनका उपयोग मानव जाति द्वारा अपने विकास मॉडल के रूप में किया जा रहा है, किसी न किसी रूप में यह कई शताब्दियों से अस्तित्व में है। स्पष्टता के लिए हम उन्हें शोषक और गैर-शोषक या समावेशी और गैर-समावेशी के रूप में वर्णित कर सकते हैं। यह दो मॉडल वास्तव में कब उत्पन्न हुए थे इसका निश्चित रूप से उत्तर नहीं दिया जा सकता। लेकिन इनके बीच अंतर तब स्पष्ट हुआ जब सेमेटिक या अब्राहमिक धर्मों द्वारा मनुष्य, ईश्वर और प्रकृति के बीच के संबंधों को परिभाषित किया गया। इससे पहले विश्वसनीय आधारों पर यह माना जाता है कि मनुष्य का प्रकृति के साथ सहजीवी संबंध था, जिसमें मानव प्रकृति को अपनी मां मानते थे। आदिम दिनों से ही धरती और प्रकृति के हर पहलू और शक्ति को मानव द्वारा देवत्व की भावना के साथ देखा जाता था। इसे हम किसी भी नाम से कहें लेकिन इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि मनुष्य प्रकृति की पूजा करते थे और उसकी पवित्रता को भंग करना और उसे बेवजह नष्ट करना पाप समझते थे। मानव अपने भरण-पोषण के लिए धरती मां पर निर्भर था उसके प्रचुर उपहारों का लाभ उठाता था लेकिन किसी भी परिस्थिति में वह उसका शोषण नहीं करता था और प्रकृति को वह अपूरणीय क्षति पहुँचाने के बारे में सोच भी नहीं सकता था, मनुष्य प्रकृति के अभिन्न हिस्से के रूप में रहता था। प्रकृति ने उन्हें अटूट सुरक्षा प्रदान की थी। यह एक ऐसा संबंध था जो प्रागैतिहासिक काल से पूरे विश्व में प्रचलित था। भारत में प्रकृति के प्रति मनुष्य का दृष्टिकोण विश्व दृष्टि का परिणाम था जो प्राकृतिक और सार्वभौमिक दोनों था। भारत में यह हमारे ऋषियों और मनीषियों द्वारा विकसित एक दृष्टि थी। इस दृष्टि को वैदिक मंत्रों में व्यापक रूप से शामिल किया गया था, प्रकृति के साथ मनुष्य का संबंध मनुष्य के दिन-प्रतिदिन जीवन का हिस्सा बन गए। इसे इसके व्यापक अर्थ में सनातन धर्म के रूप में जाने जाने लगा। इसलिए सनातन धर्म मार्गदर्शक दर्शन के साथ-साथ व्यावहारिक सिद्धांत बन गया, इसी व्यवहारिक दृष्टि को आज सतत विकास कहा जाता है। पारंपरिक धर्मों ने हमेशा प्रकृति का सम्मान किया, लेकिन प्रकृति के प्रति इस घनिष्ट संबंध और श्रद्धापूर्ण रवैये को अब्राह्मिक परंपराओं के आगमन के साथ एक कठोर झटका लगा। इन परंपराओं ने मानव और प्रकृति के संबंधों को इस विश्वास के साथ पुनः परिभाषित किया कि ब्रह्मांड में और उसके पीछे आध्यात्मिक उपस्थिति किसी एक ही उत्कृष्ट एकेश्वरवाद में केंद्रित है और पूरे ब्रह्मांड में इसके अलावा और कुछ भी दिव्य नहीं है। इस प्रकार एक मानवीय और काल्पनिक ईश्वर की रचना की गई। ऐसा माना गया कि मानव और प्रकृति दोनों को इस काल्पनिक ईश्वर द्वारा बनाया

गया, जो मानव द्वारा औजारों, कला के कार्यो और संस्थानों के निर्माण की सादृश्यता पर आधारित है। निर्माणकर्ता के पास उसके द्वारा बनाई गई चीजों को नष्ट करने की शक्ति और अधिकार है। उत्पत्ति 1:26-30 (Genesis 1:26-30) के अनुसार परमेश्वर ने संपूर्ण मानवीय सृष्टि को मानव जाति के अधिकार में रखा है। इस सिद्धांत द्वारा पर्यावरण से उसकी दिव्यता को छीन लेना था जिससे मनुष्यों को आगे इस प्रकृति का शोषण करने का लाइसेंस (एकाधिकार) दिया जा सके, ऐसी प्रकृति जो अब पवित्र नहीं थी। मूल रूप से प्रकृति को लोगों ने जिस सम्मान और विस्मय के साथ देखा व व्यवहार किया, उसे अब्राहमिक परंपराओं से उपजे इस एकेश्वरवाद ने दूर कर दिया। यहूदी इजराइली प्रवर्तकों के संस्करणों में और बाद में ईसाई और मुसलमानों के संस्करणों में यह और स्पष्ट हो गया था। आधुनिक विज्ञान और प्रोद्योगिकी की प्रगति ने पर्यावरण के प्रति पवित्रता को और कम कर दिया। आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के केंद्र में यह धारणा प्रवाहित होती है कि मानव जाति और प्रकृति दो विपरीत संस्थाएं हैं और इसमे एक का लाभ दूसरे के नुकसान का कारण है। उल्लेखनीय यह है कि प्रकृति के प्रति यह दृष्टिकोण और विकास का यह प्रतिमान (पैटर्न) जिसने मध्ययुगीन काल में तथा उसके बाद पश्चिम में आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी को प्रेरित किया, वह सेमिटिक धर्म द्वारा मानव व प्रकृति के संबंधों की, की गई व्याख्या/वकालत से बिल्कुल भिन्न नहीं था। भले ही एक अलग स्तर पर यह दोनों सेमिटिक धर्म और आधुनिक विज्ञान एक दूसरे के प्रति असहिष्णु थे और कई खूनी लड़ाईयां लड़ चुके थे। लेकिन आश्चर्यजनक बात यह थी, जो एक चीज समान थी और वह थी प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण। दुनिया भर में सनातन धर्म और अन्य पूर्व अब्राहमिक धर्मों और संस्कृतियों के विपरीत अब्राहमिक धर्मों का मानना था कि मनुष्य ईश्वर की सभी रचनाओं में श्रेष्ठ और शीर्ष पर है तथा उसका पूरी सृष्टि पर अधिकार है। प्रभु येसु का यह कहना है कि हमारे सिर का बाल-बाल गिना हुआ है और हम आकाश के पक्षियों से, बहुतेरी गौरैयों से, भेड़ों से कहीं बढ़ कर हैं (देखिए मत्ती 6:26; 10:30; 12:12)। वास्तव में इन धर्मों की पवित्र पुस्तकों के अनुसार मानव अपने आनंद के लिए किसी भी तरह से प्रकृति का उपयोग करने के लिए स्वतंत्र था। इसी विचार की वजह से इन अब्राहमिक धर्मों के अनुयायियों ने प्रकृति के प्रति अत्यंत शोषणकारी व्यवहार कर रहे हैं। जानवरों और पक्षियों को मार रहे हैं, पेड़ों और जंगलों को बिना किसी संयम के काट रहे हैं, अन्य धर्मों और संस्कृतियों के शोषण और बर्बर विनाश के लिए भी यही मनोविज्ञान उनके द्वारा अपनाया गया है। आधुनिक विज्ञान भी उसी पैटर्न का पालन करता है। आधुनिक विज्ञान समाज के कमजोर वर्गों तथा विशेषकर महिलाओं को सशक्त बनाने का दावा करता है लेकिन प्रकृति का शोषण वाला दर्शन इसमे सफल होता दिखाई नहीं देता है। वंदना शिवा कहती है कि आधुनिक उद्योग और कृषि के आधुनिक विकास का परिणाम महिलाओं और प्रकृति का बेरहमी से शोषण करना रहा है। वास्तव में प्रकृति पर विजय पाने और उसका दोहन करने के एकमात्र उद्देश्य से वैज्ञानिक प्रगति को बढ़ावा दिया गया है, उसका दृढ़ विश्वास है कि एक दिन ऐसा आएगा जब प्रकृति के सभी रहस्य वैज्ञानिकों की जांच से सबके सामने उजागर हो जाएंगे। प्रकृति की शक्तियों को वश में करने के लिए प्रकृति के रहस्यों को जानना और उन्हें मनुष्यों की सेवा में लगाना वैज्ञानिकों का उद्देश्य रहा है। आधुनिक प्रौद्योगिकी इस उद्देश्य को प्राप्त करने की दिशा में सहायक दिखाई देती है। वर्तमान में महत्वकांक्षी और सत्ता के मद में चूर शासकों ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी की इन ताकतों का उपयोग करने में महारत हासिल कर ली है जो खतरनाक तरीके से प्रकृति का शोषण करने की क्षमता रखते हैं, यह निश्चित है कि इस अंधाधुंध शोषण से मानवता के लिए भयानक परिणाम सामने आएंगे। भौतिक प्रगति की इस दौड़ में जो दांव पर लगा है, वह है मानवता का अस्तित्व। यह स्थिति मानवता के सामने उस प्रतिमान को स्वीकार करने के परिणामस्वरुप है जो आज अपनी विशिष्ट और शोषक विचारधारा और दृष्टिकोण के साथ शासन कर रहा है। बुद्धिजीवियों व विद्वानों द्वारा दी गई सभी चेतावनियों के बावजूद और यहां तक की प्रकृति के व्यवहार में खतरनाक परिवर्तन दिखाई देने के बावजूद वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकीविदों और सत्ता में उनके साथ जोड़-तोड़ करने वालों को विश्वास है कि आधुनिक वैज्ञानिक खोजों और उनके तकनीकी अनुप्रयोगों द्वारा उत्पन्न सभी बुराइयों को अधिक-से-अधिक परिष्कृत प्रौद्योगिकी द्वारा नियंत्रित और यहां तक कि प्रभावी ढंग से समाप्त भी किया जा सकता है। प्रचलित वर्तमान प्रतिमान ने प्रकृति के सीमित और नाजुक क्षेत्रों में भी शोषण का दमन चक्र शुरू कर दिया है। वे प्रकृति की प्रतिक्रिया से निपटने के लिए अपनी सीमित क्षमताओं के प्रति घोर अनजान हैं। यह अज्ञानता आत्मघाती होने के लिए बाध्य है। मनुष्य द्वारा प्रकृति के असीमित शोषण के इस प्रतिमान को बदलना ही मानव अस्तित्व को बचाने का एकमात्र तरीका है। इससे इस तर्क को बल मिलता है कि औद्योगिकरण पर्यावरण विनाश का कारण है और गैर-औद्योगिक समाज वातावरण/प्रकृति के मूल रूप से खिलवाड़ किए बिना उसके साथ रहता था।

भारत में प्रकृति और मानव के बीच के संबंधों को लेकर जो दृष्टिकोण प्रचलित है वह सनातन/हिंदू धर्म की हजारों वर्षो की परंपराओं पर आधारित है। सनातन धर्म अब्राहमिक धर्मो की मान्यताओं से पूरी तरह से अलग मान्यताओं पर आधारित है, इसकी विश्व दृष्टि मनुष्य, प्रकृति और ईश्वर के बीच कोई विभाजन स्वीकार नहीं करती है। ईश्वर अपनी प्रत्येक रचना व प्रकृति के प्रत्येक हिस्से में समाहित है, जिसका मनुष्य एक अविभाज्य अंग है। इस प्रकार ईश्वर हर जगह व्याप्त है तथा प्रकृति और मनुष्य दोनों दिव्य है, उनका संबंध

पारस्परिकता व अन्योन्याश्रिता का है। हिंदू परंपरा में प्रकृति गाय की तरह है और मनुष्य उसकी संतान होने के कारण गाय का दूध प्राप्त करने का अधिकारी है, लेकिन इससे आगे नहीं। वैध आवश्यकताओं से परे प्रकृति को नष्ट करना अनुमेय/स्वीकृत व मान्य सीमाओं का उल्लंघन करना है। यदि अस्तित्व के इस नियम का पालन किया जाए तो मनुष्य और प्रकृति दोनों साथ-साथ फल-फूल सकते हैं। वेदों, उपनिषदों, धर्मशास्त्रों, पुराणों और इतिहास सहित संपूर्ण सनातन/हिंदू साहित्य सुंदर संदर्भों से भरा पड़ा है जो पर्यावरण को नुकसान न पहुंचाने और गैर-शोषणकारी प्रवृत्ति अपनाने के लिए प्रेरित करता है और पारिस्थितिकी के संतुलन को बनाए रखने की दिशा दिखाता है। भारतीय/सनातन दृष्टिकोण में सारी सृष्टि एक साथ एक सुनहरे धागे से जुड़ी हुई है क्योंकि सभी अभिव्यक्ति शाश्वत ब्रह्मा से निकली है, इसलिए वेदों के ऋषियों ने ना केवल मानव जाति के कल्याण के लिए प्रार्थना की, बल्कि जानवरों सहित सभी जीवित प्राणियों के लिए और यहां तक कि पेड़ और पौधों लिए भी प्रार्थना की। तैत्तिरीय उपनिषद का यह श्लोक इसी धारणा को व्यक्त करता है - ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः। सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु। मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ अर्थात सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी का जीवन मंगलमय बनें और कोई भी दुःख का भागी न बने। हे भगवन हमें ऐसा वर दो! सनातन धर्म ने प्रकृति के साथ मानव के संबंधों में पूर्ण सामंजस्य के लिए दिशा निर्देश निर्धारित किए हैं। यह आश्चर्य की बात है कि वैदिक परंपरा की श्रृंखला ने विभिन्न जानवरों, पक्षियों और पौधों को हमारी देवियों व देवताओं की छवियों के अविभाज्य अंग के रूप में हिंदुओं के सामाजिक-धार्मिक जीवन में बड़ी ही सुंदरता से बुना है। हिंदू दृष्टिकोण में जानवर हमेशा से केंद्रीय भूमिका निभाते रहे हैं। यह इससे स्पष्ट होता है कि हिंदुओं की देवी व देवताओं के वाहन जानवर व पक्षी है। शिव के वाहन बैल/नंदी, विष्णु के गरुड़, दुर्गा के सिंह, महालक्ष्मी के हाथी, सरस्वती के हंस, श्रीकृष्ण के बछड़े, गणेश के चूहे, कार्तिकेय के मोर तथा अन्य इसी तरह किसी-न-किसी जानवर व पक्षी को अपने वाहन के रूप में अपनाए हुए हैं। विष्णु के 10 अवतारों में से प्रथम चार जानवर को ही प्रतिबिंबित करते हैं। वास्तव में इसके वैध कारण मौजूद हैं कि हमें प्रकृति का शोषण क्यों नहीं करना चाहिए। यह केवल व्यवहारिक सांसारिक ज्ञान का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह उससे अधिक है। मान लें कि प्रकृति हमारे सुख-सुविधा और विलासिता के लिए अटूट संसाधन देने में सक्षम है तो क्या हमें उनमें लिप्त रहना चाहिए? क्या असीमित उपभोग अपने आप में एक वांछनीय आवश्यकता है? क्या हम इससे संतुष्ट हो सकेंगे? क्या अधिक से अधिक उपभोग करने से हमारी इच्छा और सुख भोगने की वासना खत्म हो जाएगी? यहां मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य का भी प्रश्न है, क्या अंतहीन विलासिता से भरे कथित आनंद की स्थिति, आनंदमय स्थिति की ओर ले जाएगी या यह दुःखद निराशा में समाप्त हो जाएगी। हमारे सामने राजा ययाति का दृष्टांत (उदाहरण) उपलब्ध है। राजा ययाति ने यह प्रयोग किया था और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भोग से मानव वासना को नहीं बुझाया जा सकता। उपभोक्तावाद के प्रति यही सनातन दृष्टिकोण है जो इसे सीमित कर प्रकृति के शोषण पर एक प्रामाणिक विराम लगा सकता है। दार्शनिक रूप से प्रकृति के शोषण के खिलाफ तर्क अभी भी अधिक मान्य है। अद्वैत दर्शन एक वास्तविकता है, मनुष्य और प्रकृति में परस्पर जुड़ाव होने के कारण प्रकृति को चोट पहुंचाना स्वयं मनुष्य को चोट पहुंचाना है जिसे कोई भी समझदार व्यक्ति कभी भी नहीं करना चाहेगा। उच्चतम अद्वैत चेतना से नीचे आने को तर्कसंगत या वैध नहीं बना सकता। मनुष्य प्रकृति को अपनी मां के रूप में देखता है और इस भावनात्मकता के बिंदु से प्रकृति का शोषण अकल्पनीय हो जाता है। आप इसे किसी भी तरह से देखें, सनातन/हिंदू परंपरा मनुष्य में एक संवेदनशीलता पैदा करती है जो इसे प्रकृति को अपने से दूर और एक निर्जीव वस्तु के रूप में मनाने की अनुमति नहीं देता है। यह मनुष्य द्वारा किए जा रहे प्रकृति के विनाश के खिलाफ अंतिम सुरक्षा है, जो हमें ना तो अब्राहमिक परंपरा में देखने को मिलती है और ना ही आधुनिक भौतिकवादी दृष्टिकोण में चाहे वह साम्यवादी हो या पूंजीवादी। वास्तव में जो आवश्यक है वह यह है कि वर्तमान में विकास के दृष्टिकोण में जिस पूर्ण परिवर्तन की बात की जा रही है, जिस एक अलग प्रतिमान की बात की जा रही है, वह हमें यही सनातन धर्म सिखाता है। लेकिन पॉल पेडर्सन कहते हैं कि पर्यावरण के लिए चिंता व्यक्त करते समय धार्मिक शब्दों या परंपराओं का हवाला क्यों दिया जाता है, वे कहते हैं कि पारिस्थितिकी की अवधारणा आधुनिकता के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। यह विज्ञान की व्याख्या में है और इसकी वैश्विक वैधता है, यह सार्वभौमिक और गैर-संदर्भित है। लेकिन आज बौद्धिक और वैज्ञानिक समुदाय आधुनिक तकनीक की बुराइयों को स्पष्ट रूप से देख रहा है और उन्हें उम्मीद है कि एक परिष्कृत आधुनिक वैज्ञानिक सफलता होगी जो भविष्य में विज्ञान और प्रौद्योगिकी से उपजी तमाम बुराइयों को अप्रभावी बना देगी। लेकिन हमें यह समझना है कि प्रौद्योगिकी शुद्ध, मुक्त लालच है। एक चीज जो मूल रूप से बुराई है उसे किसी भी वैज्ञानिक सफलता से अच्छा नहीं बनाया जा सकता। ऐसी स्थिति में सनातन धर्म पारिस्थितिक विनाश को खत्म करने का सबसे अच्छा विकल्प मुहैया कराता है, क्योंकि हमारे पास विकल्प सीमित होते जा रहे हैं, हमारी नैतिकता में एक क्रांति की जरूरत है, कोई भी दंडात्मक विकल्प पर्याप्त नहीं होगा।

3. पूंजीवाद, साम्यवाद, भारतीय परंपरा।

पूंजीवादी विचारधारा में विकास करने की अनंत संभावनाएं व

अवसर है, इससे प्रगति और विकास को प्रोत्साहन मिलता है। मैक्स वेबर पूंजीवादी उद्यम को विनिमय के माध्यम से लाभ प्राप्त करने के लिए की गई किसी प्रकार की आर्थिक गतिविधि/कार्यवाही के रूप में परिभाषित करते हैं। पूंजीवाद में वस्तुओं का उत्पादन शामिल है। इसमें सिर्फ यही विशेषता नहीं है क्योंकि लाभदायक विनिमय के उद्देश्य से माल/वस्तुओं का उत्पादन कई अन्य संदर्भ में भी किया जाता है। लेकिन इसमें कमी यह है कि यह लोगों के बीच समानता सुनिश्चित नहीं करती है। साम्यवादी विचारधारा सबको बुनियादी समानता सुनिश्चित करने और सबको बुनियादी चीजें प्रदान हो इसकी व्यवस्था पर जोर देती है। लेकिन इसमें कमी यह है कि यह व्यक्ति द्वारा स्वयं के स्तर पर व्यक्तिगत प्रगति करने की गारंटी नहीं देती है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति के हर एक जीव का ध्यान भी रखा जाता है और एक ऐसे विकास की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता है जिसमे सभी जीवों का कल्याण समाहित हो। इसी कारण भारतीय दृष्टिकोण मानता है कि यदि मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है तो यह उसका कर्तव्य है कि वह अन्य जीवों का ध्यान रखें जबकि पश्चिमी सभ्यता यह मानती है कि यदि मनुष्य श्रेष्ठ है तो वह इसलिए कि, वह अन्य जीवों को अपने अधीन कर सके, उन पर नियंत्रण करें और अपने हित के लिए उनका इस्तेमाल करें। पश्चिम की इस धारणा के पीछे यह दर्शन है कि - ईश्वर ने मनुष्य को अपना प्रतिरूप और अपने सदृष बनाया तथा उसे समुद्र की मछलियों, आकाश के पक्षियों, घरेलू और जंगली जानवरों और जमीन पर रेंगने वाले सब जीव-जन्तुओं पर शासन करने का अधिकार दिया। (देखिए उत्पत्ति 1:26; 9:2)। भारतीय/हिंदू परंपरा में अन्य जीवों का ध्यान कैसे रखा जाता है। इसका उदाहरण यह है कि पितृपक्ष जिसमें पूर्वजों का तर्पण किया जाता है। उस दिन खाने के तीन हिस्से निकाल कर रखे जाते हैं। एक कुत्ते के लिए, एक गाय के लिए और एक कौवे के लिए। गाय को देवतुल्य पशु माना गया है, जो जानवरों में सबसे उच्च स्तर पर है। कुत्ते को श्मशान के देवता भैरव का वाहन माना गया है, जो जीवन के अंत को दर्शाता है और कौवे को ऐसा जंतु माना गया है जो तमाम तरह की गंदगी को साफ करता है। इसलिए यहां यह धारणा स्पष्ट होती है कि यदि प्रकृति ने हमें सबसे श्रेष्ठ जीव बनाया है तो सबसे उच्च से लेकर निम्न जंतु का ध्यान रखना हमारा कर्तव्य है। भारतीय/हिंदू परंपरा में आपने देखा होगा कि मछलियों को दाना देने से लेकर चींटियों को आटा खिलाने तक की परंपरा का पालन व्यापक रूप से किया जाता है। प्रकृति में मानव अस्तित्व के लिए पेड़ों का कितना महत्व है इसको भारतीय ऋषियों व मनीषियों ने बखूबी समझा था और इसलिए सनातन धर्म में पेड़ों को लगाने के कार्य को धार्मिक कार्यों के अभिन्न हिस्से के रूप में स्वीकार किया गया है। वसुधा नारायणन कहती हैं कि पेड़ों को काटने की निंदा व पेड़ लगाने का समर्थन करने वाली कई शिक्षाएं सनातन/हिंदू धर्म में है। जैसे देवी पार्वती की शिक्षा है कि एक पेड़ 10 पुत्रों के बराबर है। वर्तमान में हम देखते हैं कि सरकारें विकास योजनाओं और कार्यक्रमों को लागू करने के लिए वनों की कटाई में अग्रणी होती है, लेकिन पेड़ों को लगाने में सरकारी प्रयास अधिक सफल नहीं होते हैं। चूंकि सनातन धर्म की शिक्षाओं में वृक्षों को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, इसलिए पेड़ों को लगाना तथा उनका संरक्षण करना धार्मिक कार्य माना जाता है। इसका एक प्रमुख उदाहरण हमें दक्षिण भारत में देखने को मिलता है। दक्षिण भारत में तिरुमला-तिरुपति जैसे हिंदू मंदिर ने वृक्षारोपण के धर्म का पालन करने के लिए एक सराहनीय पहल की। इस प्रसिद्ध तीर्थ मंदिर में तीर्थ यात्रियों को प्रसाद या भौतिक प्रतीक के रूप में लड्डू दिया जाता था जिसे देवता के आशीर्वाद स्वरुप दिया जाता था और जिसे खाने पर तीर्थयात्रियों को एक दिव्य कृपा मिलती है, ऐसा विश्वास है। प्रतिदिन लगभग एक लाख लड्डू दिए जाते थे। अब, हालांकि, इसकी जगह पेड़ों के पौधे दिए जाते हैं और तीर्थ यात्रियों को निर्देश दिया जाता है कि वे उन्हें घर या मंदिर के मैदान में लगाएं, परिणामस्वरूप अब तक 25 लाख से अधिक पेड़ लगाए जा चुके हैं।

निसंदेह आधुनिक मनुष्य पर्यावरण के संरक्षण और पारिस्थितिकी को प्रदूषण और विनाश से बचाने के लिए जागरूक हो रहा है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वह कुछ नीतियों व कार्यक्रमों को लागू करने के तरीके व साधन भी विकसित कर रहा है, लेकिन इस दृष्टिकोण की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि यह आधे-अधूरे और सुविधा पर आधारित है। जो इस समय इस भय से पैदा हुई है कि प्रकृति पर किए जा रहे हमलों को लेकर जब प्रकृति का संयम टूटेगा तो क्या होगा, मनुष्य सिर्फ इस बात से भयभीत होकर प्रकृति संरक्षण की ओर कदम उठा रहा है कि यदि प्रकृति बदला लेगी तो यह मानव जाति के लिए अत्यंत विनाशकारी होगा। आधुनिक मानव प्रकृति का मुकाबला करने के लिए अधिक-से-अधिक परिष्कृत तकनीकों की तलाश में है। प्रकृति और उसकी सुरक्षा के साथ उसका कोई भावनात्मक जुड़ाव नहीं है, कोई सहज प्रेम और स्नेह नहीं है, कोई सम्मान और श्रद्धा नहीं है, कोई दिव्यता की भावना नहीं है और स्वयं और प्रकृति के बीच कोई आध्यात्मिक बंधन नहीं है, वह अभी भी शोषण के मूड में ही है। हर सुख-सुविधा और विलासिता को सुनिश्चित करने के लिए अपने सपने को पूरा करने के लिए वे क्रूर व असीमित विकास को बढ़ावा दे रहे हैं। उनकी दृष्टि में बेहतर भविष्य के निर्माण के लिए अभी भौतिक विकास निम्न स्तर का है। वर्तमान में प्रकृति के शोषण करने का तरीका मनुष्य ने बदला है लेकिन उसकी मानसिकता वही है जो प्रकृति और मानव के संबंधों को लेकर अब्राहमिक धर्मों ने व्याख्या दी है कि प्रकृति सिर्फ और सिर्फ मनुष्यों को लाभ पहुँचाने के लिए ही ईश्वर द्वारा बनाई गई है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि विश्व में मानव विकास के लिए

उपलब्ध दोनों प्रतिमानों का दर्शन क्या है। इसमे कोई संदेह नहीं है कि आज विश्व को सतत विकास की आवश्यकता है क्योंकि शोषणकारी विकास के दुष्प्रभाव सामने आ रहे हैं, जो मानव अस्तित्व के लिए खतरा बन रहे हैं। भारतीय प्रतिमान व पश्चिम प्रतिमान एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत है, इसलिए दोनों में तुलना करना संभव नहीं दिखाई देता है। तुलना करने के लिए दोनों प्रतिमानों में कुछ समानताएं होनी चाहिए किंतु हमें देखने को मिलता है कि एक प्रतिमान में प्रकृति को मानव की सभी अभिलाषाएं पूर्ण करने वाली माना गया है और इसलिए उस पर मानव अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहता है जिससे वह अपनी इच्छानुसार उसका उपयोग कर सके। दूसरी तरफ एक ऐसा प्रतिमान है जो मानव को प्रकृति का अभिन्न अंग मानता है तथा मानव व प्रकृति में कोई अंतर नहीं मानता है। इसमे प्रकृति को मानव का सहयोगी माना गया है और इसलिए प्रकृति का संरक्षण करना आवश्यक माना गया है। प्रकृति से उतना ही लेने की स्वीकृति है जितनी मानव की आवश्यकता है। प्रकृति का अंधाधुंध शोषण करने का समर्थन नहीं किया गया है। वर्तमान में प्रकृति को बचाने की तमाम चुनौतियों से उसी प्रतिमान से ही निपटा जा सकता है जो प्रकृति के साथ सामंजस्य पूर्ण व्यवहार करने को प्रेरित करता हो।

4. संदर्भ:

1. Krishna, Nanditha. "Hinduism and nature", Penguin, 2017.
2. Naganathan, G. "ANIMAL WELFARE and NATURE", Hindu Scriptural Perspective, The Theosophical Publishing house, 2000.
3. Shiva, Vandana. "Women's indigenous knowledge and biodiversity conversation", New Delhi, Sage press, 1992.
4. Parameswaranji, P. "Heart Beats of Hindu Nation", Vivekananda Kendra prakashan trust", 2017.
5. Narayanan, Vasudha. "One tree is equal to ten sons: Hindu response to the problems of ecology, population and consumption", Journal of the American Academy of religion, 1997.
6. https://www.jayesu.com/catechism/cate1202.php
7. Milton, key. "Environmentalism and Cultural theory", Explaining the role of Anthropology in Environmental discourse. London, Routledge, 1996.
8. Pedersen, Poul. "Nature, Religion and Cultural Identity: The religious environmentalism paradigm", London: Curzon press, 1995.
9. Giddens, Anthony. "The Nation-State and Violence", Polity Press, Cambridge, 1985.
10. https://youtu.be/AR_32BmzVa0